Vedic Science, International Multidisciplinary Peer Reviewed Research Journal
Vol. 27 Issue 2. (April-June, 2025) , PP. 74-80
ISSN No. 0975-0312
DOI: https://doi.org/10.66718/vsj.v27.i2.7

पञ्चमहायज्ञों की प्रासङ्गिकता

डॉ. राकेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य
सरकारी महिला महाविद्यालयः, पुरी

Abstract

In Vedic culture, Yajñas hold significant importance. The Śatapatha Brāhmaṇa states, "Yajño vai śreṣṭhatamam karma," meaning Yajña is the supreme deed. Three means of righteousness (Dharma) have been identified: (i) Knowledge (Jñāna), (ii) Action (Karma), and (iii) Devotion (Bhakti), all of which are integrated into Yajña—"Sarvam Yajñamayaṁ Jagat," meaning "the entire universe is permeated by Yajña." The Brāhmaṇa texts of Vedic literature provide detailed descriptions of various Yajñas, such as Smārta and Śrauta.

In the Mahābhārata, Yudhiṣṭhira conducted the Rājasūya Yajña. Similarly, the Rāmāyaṇa mentions the performance of rituals like Putreṣṭi and Aśvamedha Yajñas. The Taittirīya Āraṇyaka offers an extensive description of the five great Yajñas (Pañca Mahāyajñas), which are: (i) Brāhma Yajña, (ii) Deva Yajña, (iii) Pitṛ Yajña, (iv) Bhūta Yajña, (v) Nṛ Yajña

The responsibility of performing these Yajñas is generally assigned to householders. These Pañca Mahāyajñas are vital components of Indian culture. India's global reputation is deeply rooted in its culture and the Sanskrit language. Hence, it is said, "Bhāratasya Pratiṣṭhe dve—Saṁskṛtam Saṁskṛtistathā," meaning "India's prestige lies in both Sanskrit and its culture."

In this materialistic age, where Western culture is rapidly influencing societies, the relevance and importance of the Pañca Mahāyajñas are profoundly understood for the preservation and propagation of our cultural heritage.

शोधसंक्षेप

वैदिक संस्कृति में यज्ञों का विशेष महत्त्व वर्णित है। शतपथब्राह्मण कहता है – "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। धर्म के तीन साधन बताएँ गये है – (i) ज्ञान (ii) कर्म तथा (iii) भक्ति, जिनका समन्वय यज्ञ में बताया गया है – "सर्वं यज्ञमयं जगत्।" वैदिक वाङ्मय के ब्राह्मण ग्रन्थों में स्मार्त, श्रौत आदि अनेक यज्ञों का सविस्तर वर्णन है। महाभारत में युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ कराया गया था। रामयण में भी पुत्रेष्टि, अश्वमेध आदि यज्ञ कराने का वर्णन मिलता है। पञ्च महायज्ञों का विस्तारपूर्ण वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक में मिलता है। जो निम्नोक्त है – (i) ब्रह्मयज्ञ (ii) देवयज्ञ (iii) पितृयज्ञ (iv) भूतयज्ञ तथा (v) नृयज्ञ। उनका अधिकारी प्रायः तभी गृहस्थों को बताया गया है। ये पञ्चमहायज्ञ हमारी भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। पूरे विश्व में भारत की प्रतिष्ठा हमारी संस्कृति तथा संस्कृत से ही है। इसीलिए कहा गया है – "भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।" इस भौतिकवादी युग में जहाँ पाश्चात्य संस्कृति का बहुत तेजी से प्रभाव बढ रहा है, इसीलिए अपनी संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार-प्रसार के निमित्त पञ्च महायज्ञों की महती प्रासङ्गिकता समझ में आती है।

मुख्य शब्द – हवि, सृष्टि, श्रौत्र, स्मार्त्त।

भारत में यज्ञ करने की परम्परा पुरातन समय से चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ अपौरुषेय वेद है, जिसके पहले मन्त्र में ही अग्नि की स्तुति करते हुए यज्ञ का उल्लेख किया गया है – **"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवृत्विजम्।**

होतारं रत्नधातमम्।"[1]

वेद के दो प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है – कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड अर्थात् मनुष्य जीवन के कर्त्तव्य का ज्ञान कराना, मनुष्य जीवन के वास्तविक लक्ष्य का ज्ञान कराना तथा उसे सरल उपाय द्वारा प्राप्त कराना ही वेद का प्रमुख उद्देश्य है। कर्म-काण्ड के प्रसङ्ग में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का विस्तार से वर्णन मिलता है। यज्ञ शब्द पारिभाषिक तथा अनेकार्थी है, जिसके संस्कृत में प्रमुख ३ अर्थ किये जाते है –

(i)देवपूजा – अर्थात् देवाताओं की पूजा करना –

(क) यजनं इन्द्रादिदेवानां पूजनं सत्कारभावनं यज्ञः।

(ख) इज्यन्ते(पूज्यन्ते) देवाः अनेनेति यज्ञः।

(ii)सङ्गतिकरणार्थक – धर्म, देश की रक्षा तथा विश्वकल्याण आदि भावना से महापुरुषों को स्थानविशेष पर एकत्रित करना भी यज्ञ पदवाच्य है – "यजनं धर्मदेशमर्यादारक्षायै महापुरुषाणामेकीकरणं यज्ञः।"

(iii)दानार्थकः – दान देने अर्थ में भी यज्ञ शब्द का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है – "इज्यन्ते सन्तोष्यन्ते याचका येन कर्मणा स यज्ञः।"

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि जिस कर्म विशेष में देवता, हवनीयपदार्थ, द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज और दक्षिणा इन पाँचो का संयोग हो उसे यज्ञ कहते है –

"देवानां द्रव्यहविषा ऋक्सामयजुषा तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते॥"[2]

लोकव्यवहार में इसी अर्थ विशेष में यज्ञ शब्द अत्यधिक प्रचलित है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण कहता है कि वेदों का प्रादुर्भाव ही यज्ञों के लिए हुआ है – **"वेदास्तु यज्ञार्थमभिप्रवृत्तः।"[3]** यही बात आचार्य लगध ने भी कही है – "वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वाविहिताश्च यज्ञाः।" यज्ञ की प्रशंसा में ऋग्वेद कहता है – **"अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।"[4]** अथर्ववेद भी सम्पूर्ण विश्व का नाभि यज्ञ को मानता है – **"यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।"[5]** यजुर्वेद का पुरुषसूक्त कहता है कि यज्ञ से ही ऋक्, यजु, साम उत्पन्न हुआ है – "तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि यज्ञिरे।"

कालिकापुराण में वर्णन मिलता है कि यज्ञ विना प्रजा भयातुर एवं भूख से पीडित हो जाती है, वर्षा के अभाव में अत्यन्त दुःख एवं विनाश झेलना पडता है –

"यज्ञे विनष्टे सकलाः प्रजाः क्षुद्भयाकातराः।
वृष्ट्याभावन्महद्दुःखं प्राप्य नष्टाश्च काश्चन्॥"[6]

संस्कृत वाङ्मय में अलग-अलग कामना से अलग-अलग यज्ञों को करने के अनेक दृष्टान्त प्राप्त होते है। जैसे राजा दशरथ द्वारा पुत्र की इच्छा से पुत्रेष्टि यज्ञ करना, कठोपनिषद् मे महर्षि उद्दालक द्वारा वाजसनेय यज्ञ करना, रघुवंश महाकाव्य में दिलीप द्वारा अश्वमेध यज्ञ कराना, स्वर्ग कामना से ज्योतिष्टोम अथवा अग्निहोत्र यज्ञ करना, राष्ट्र की उन्नति के लिए राजसूय यज्ञ, विश्वकल्याण के लिए भी यज्ञ का विधान मिलता है।

वस्तुतः यज्ञ का सम्बन्ध किसी धर्म या पंथ से नही है, अपितु वातावरण की शुद्धता, मन, आत्मा की पवित्रता तथा विज्ञान से है। विज्ञान का अनुसन्धान बताता है कि गाय के घी को चावलों में मिश्रित करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक जब अग्निहोत्र में आहुति दी जाती है, तब उस आहुति के जलने में उत्पन्न चार गैसें अभी तक पहचानी जा चुकी हैं, जो निम्नोक्त है- (i)एथिलीन ऑक्साइड् (ii)प्रापिलीन ऑक्साइड् (iii)फार्मल्डिहाइड् तथा (iv)बीता प्रोपियोलोक्टोन। इन गैसों में कई रोगों को तथा मन के तनाव को दूर करने की अद्भुत क्षमता है।

वेदों में असंख्य प्रकार के यज्ञों का विधान है, जिनमें पंच महायज्ञों का अपना विशिष्ट स्थान है। राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध आदि को यज्ञ कहा गया, परन्तु ब्रह्म, देव, पितृ, भूत तथा नृ के लिए महायज्ञ शब्द का प्रयोग किया गया। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि इन पंच महायज्ञों को प्रत्येक गृहस्थ करे। तैत्तिरीय आरण्यक में इसके विशेष महत्त्व पर प्रकाश डाला

गया है। मनुस्मृति के अनुसार गृहस्थ पुरुषों को विवाह से निष्पादित अग्नि में गृह्यसूत्रोक्त कर्मों को गृहसूत्रों के विधान के अनुसार सम्पन्न करना चाहिए, पंचमहायज्ञ के विधान को और प्रतिदिन भोजन के लिए किये जाने वाले पाचन कार्य को भी विवाह से निष्पादित अग्नि में ही सम्पन्न करना चाहिए।

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पंचयज्ञविधानं च पङ्क्तिं चाऽन्वाहिकीं गृही॥[7]

मनुष्य गलतियों का पुतला है, अर्थात् मनुष्य से जाने अन्जाने गलतियाँ स्वाभाविक रूप से हो जाती है। हमारी पौराणिक मान्यता के अनुसार मनुष्य अपने पूर्व जन्मों के पपा कर्मों के फल को भोगने तथा इस जन्म में निष्काम कर्म करते हुए जन्म मृत्यु के बन्धन से सदा सदा के लिए मुक्त होने के लिए जन्म लेता है। जैसे पिता के साथ मेला में जाने वाला बच्चा मेले में विभिन्न प्रकार के खिलौनों को देखकर पिता का हाथ छोडकर गायब हो जाता है, तथा बहुत दुःख पाता है, उसी प्रकार परमपिता परमेश्वर जब अंगुलि पकडकर हमें संसार में लाते है, और हम इम मिथ्या संसार के अनित्य प्रेय पदार्थों को देखकर उसे ही पाने के लिए अपनी सारी ऊर्जा लगा देते हैं। हम इस संस्कार में अनित्य पदार्थों को भोगने की प्रतिस्पर्द्धा में जाने-अन्जाने अनेक ऐसे कर्म करते है, जिससे हमारा प्रारब्ध ऐसे तैयार होता है किं हमें बार-बार २४ लाख योनियों में भटकना पड़ता है।

अन्जाने में होने वाले पाँच ऐसे पाप है, जिनसे पंचसूना दोष उत्पन्न होता है। यह पाँच कार्यों तथा जगहों से सम्बन्धित है, जहाँ अज्ञातवशात् जीवों की हिंसा हो सकती है। जैसे-

(i) रसोई – लकड़ी से भोजन पकाते समय कीट-पतङ्गों की जलने की संभावना रहती है।

(ii) चक्की – गेहूँ को चक्की से पिसते समय छोटे जीव पीस सकते है।

(iii) झाडू – घर की झाडू में सफाइ करने से चीटी आदि छोटे जीवों की मरने की संभावना रहती है।

(iv) सिलबट्टा – सिलबट्टा पर कुछ खाद्य या औषधि पिसते हुए जीव हत्या की सम्भावना रहती है।

(v) पानी का घड़ा – घड़े में सोये या बैठे कीट-पतङ्गों पर पानी पड़ता है तो उनके मरने की प्रबल संभावना रहती है।

इन उपर्युक्त अन्जाने पापयुक्त कर्मों से पंचसूना नामक दोष उत्पन्न होता है –

पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यस्तु वाहयन्॥[8]

जीवन-धारण के कार्य में ऐसे पापों से बचना संभव नहीं है। इसीलिए महर्षियों ने पंचसूना दोष के परिहार या प्रायश्चित के लिए पंचमहायज्ञों का विधान किया है। जो कि वर्तमान समय में बडे ही प्रासङ्गिक है –

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्येहं गृहमेधिनाम्॥[9]
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो देवो बलिर्भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥[10]

अर्थात् अध्ययन (वेदाध्ययन) एवं अध्यापन को ब्रह्मयज्ञ, अपनों पितरों के प्रति कृतज्ञता पूर्वक तर्पण करना पितृयज्ञ, देवताओं के प्रसन्नता हेतु पूजन-अर्चन तथा हवन में आहुति देना देवयज्ञ है। बेजुवान तथा निरीह पशु-पक्षियों को अन्न एवं जल देना बलि यज्ञ तथा अतिथि सत्कार नृयज्ञ है। जो गृहस्थ इन पञ्च महायज्ञों को श्रद्धा-विश्वास तथा आदर सहित करता है वह पंच सूना दोष से लिप्त नहीं होता –

पञ्चैतान् यो महायज्ञान् न ह्यापयति शक्तितः।
संगृहेऽपि वसन् नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥[11]

उपर्युक्त पंच महायज्ञों को क्रमशः अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्म हुत और प्रशित इन नामों से भी व्यवहृत किया जाता है।

अहुतं च हुतं चैव वध प्रहुतमेव च।
ब्राह्म्यं हुतं प्रशितं च पंचयज्ञान् प्रचक्षते ॥[12]

आज के समाज के लिए स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ वेदाध्ययन या ऐसे शास्त्रों के अध्ययन से है, जिनमें मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य का उल्लेख हो तथा उसके प्राप्ति के सरल उपाय भी उपलब्ध हो। आज मनुष्य धन तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति को ही अपने जीवन का परम उद्देश्य समझ बैठा है, जो कि अनित्य है, और मरने के बाद यही छोड़कर चले जाता है, इसके लिए ब्रह्मयज्ञ प्रासङ्गिक है। मनुष्य जीवन में स्वार्थपना इतना बड़ गया है कि वह अपने पूर्वजों के नाम तक नही स्मरण रख पाता। अपने पूर्वजों के आशीर्वाद से कुल में शान्ति और उन्नति होती है, जिसके लिए पितृयज्ञ प्रासंगिक है। देवताओं के कृपा से भाग्योदय होता है, एतदर्थ देवयज्ञ की प्रासंगिकता है। पशु-पक्षियों की बलि बन्दकर उनके साथ भी स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। सृष्टि के संतुलन में पशुपक्षियों के सुरक्षित रहने की महती आवश्यकता है, जिसके लिए बलियज्ञ प्रासंगिक है। अतिथि साक्षात् देवतुल्य होते हैं, उनके प्रति सत्कारभाव नितान्त आवश्यक है। इनके प्रसन्न होने पर पाप नष्ट होते है। अतः नृयज्ञ की भी महती प्रासंगिकता है। उपर्युक्त पंचमहायज्ञों का आगे विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत है।

(१) ब्रह्मयज्ञः – सनातन परम्परा में मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म का साक्षात्कार या आत्मबोध है। मनुष्य ब्रह्म का साक्षात्कार या ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके हमेशा-हमेशा के लिए जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त हो सकता है, परन्तु ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए हृदय में स्थित अज्ञान रूपी आवरण को हटाना होता है, जिसके लिए शास्त्रज्ञान की महती अनिवार्यता है। इसीलिए कहा है – "सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्।" हमारी संस्कृति में पंचमहायज्ञों में प्रथम ब्रह्मयज्ञ का स्थान है। ब्रह्मयज्ञ के विषय में महर्षि मनु ने 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः' कहा है। इसकी अभिप्राय यह है कि आत्मविषयक शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करना ही ब्रह्मयज्ञ है। इस यज्ञ का मुख्य उद्देश्य अज्ञान की निवृत्ति तथा वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति कराना है। वास्तविक ज्ञान ब्रह्मज्ञान है।

इस यज्ञ में वेदों के अध्ययन-अध्यापन पर विशेष बल दिया गया है। **यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्यृचं यजुः साम वा तद्ब्रह्मयज्ञः सन्तिष्ठते।** वेद हमारी संस्कृति के आधार स्तम्भ है। महर्षि मनु के अनुसार वेद समस्त ज्ञान विज्ञान के निधि है –

यः कश्चित् कस्यचित् धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः ॥[13]

वेदों के अध्ययन से अनन्त पुण्य की प्राप्ति होती है। सारी वसुधा के दान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे भी अधिक पुण्य प्रतिदिन वेदाध्ययन से होता है –

यावन्तं ह वा इमां पृथिवी वित्तेन पूर्णां ददत – लोकं जयति, त्रिस्तावन्तं जपति, भूयांसं चाक्षय्यम्, य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते। तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥[14]

इस यज्ञ को ऋषि यज्ञ तथा अहुत भी कहते है। इस यज्ञ में ऋषियों की बहुत वड़ी भूमिका है। ऋषि ही मन्त्रों के द्रष्टा अर्थात् मन्त्रात्मक ज्ञान को प्राप्त करने वाले तथा निःस्वार्थ इस ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने वाले है। ब्रह्मयज्ञ से समाज सुशिक्षित, सभ्य तथा वेदानुकूल आचरण करने वाला बनता है। इस यज्ञ के करने से गृहस्थ व्यक्ति के आयु तथा सम्पदा में वृद्धि होती है। इस यज्ञ को नियमित रूप से करने से अर्थात् नियमित रूप से वेदाध्ययन-अध्यापन करने से मनुष्य अपना, अपने समाज का, देश का तथा सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण करके अमरत्व को प्राप्त करता है।

(२) पितृयज्ञः – भारतीय ज्ञानपरम्परा में ऋणसिद्धान्त किं वा ऋणत्रय के ऊपर गम्भीर चिन्तन किया गया है। ये तीन ऋण निम्नलिखित है (क) देवऋण, (ख) ऋषिऋण तथा (ग) पितृऋण।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य धरती पर जन्म लेते ही देवताओं, ऋषियों तथा अपने पितरों के प्रति ऋणी हो जाता है। इसीलिए मनुष्यों को उपनयन संस्कार के अवसर पर तीन सूत्रों वाला यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है, जिसके तीनों सूत्र ऋणत्रय के ही प्रतीकस्वरूप है। इन ऋणों से मुक्ति के उपाय विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित है। यथा–

देवानां च पितृगणान् च ऋषीणां च तथा नरः।
ऋण्वान् जायते यस्मात् तन्मोक्षे प्रयतेत सदा ॥[15]

महर्षिपितृदेवानां गत्वा अनृण्यं यथाविधि।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥[16]

पंचमहायज्ञों में से पितृयज्ञ के प्रसङ्ग में पितरों के प्रति कृतज्ञता अर्पित करना मुख्य रूप से प्रतिपादित है। तर्पण विधि द्वारा अपने मृत पितरों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने से कुल में पितरों के प्रसन्नता से उत्तरोत्तर बृद्धि होती है। आचार्य उमेशशास्त्री ने 'भारतीय संस्कृति की तत्त्व' नामक अपनी पुस्तक में पितृयज्ञ के उद्देश्य के विषय में लिखा है कि यह एक महान् कर्त्तव्य है जिसका निर्वाह करके जीवन में अग्रसर होना ही इस यज्ञ का उद्देश्य है।

अपने दिवंगत पितरों के निर्दिष्ट आचरण का निर्वाह करते हुए उनकी कीर्त्ति को उत्तरोत्तर बढाना ही पितृयज्ञ है। इस यज्ञ में प्रतिदिन तर्पण सहित श्राद्ध होता है। आज समाज में लोगों के द्वारा अवैध तथा अनैतिक शारीरिक सम्बन्ध बनाने एवं लोक लज्जा के भय से भ्रूण हत्या में बढोत्तरी होती जा रही है। ऐसे में ब्रह्मदोष, कुलदोष अत्यधिक परिवारों की चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। पितृयज्ञ द्वारा पूर्वोक्त दोषों का परिहार हो जाता है।

गृहस्थ मनुष्य को प्रतिदिन तर्पण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि देवता, ऋषि, पितर, भूत तथा अतिथि भी गृहस्थों से ऋषिनिधि रक्षा की और, अन्नजलादि की आशा करते है। इसीलिए पितृयज्ञ बहुत महत्त्वपूर्ण है –

ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा।
आशास्ते कुटुम्बिभ्यास्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥[17]

शास्त्रों में षद्पुरुषतर्पण का उल्लेख है, जिसे नित्यकर्म स्वीकार किया गया है। इसमें दक्षिणाभिमुख होकर पितृतीर्थ से कुश-तिल जल लेकर पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह एवं बृद्ध प्रपितामहों को तीन-तीन बार जल देने का विधान है। तर्पण विधि के उपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराने का भी उल्लेख है –

एकमप्याशयेद् विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके।
न चैवाऽत्राऽशयेत् किंचित् वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥[18]

धातव्य है कि इस यज्ञ में जो पिण्डदान आदि कार्य सम्पन्न होते है, वो स्वधा शब्द के द्वारा ही अभिहित होते है - **यत्पितृभ्यः स्वधाकरोत्यप्यपस्तत्पितृयज्ञः सन्तिष्ठते।**

(३) देवयज्ञः – (यदग्नौ जुहोत्यपिसमिधं तूद्देवयज्ञः सन्तिष्ठते) होम या हवन के द्वारा प्रकृति के प्रकोप से रक्षा पाने हेतु तथा देवताओं के प्रसन्नता के लिए देवयज्ञ का विधान किया गया है। अपने मनोंवाञ्छति फल की कामना से देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के होम और हवन का विधान किया गया है। इस यज्ञ में देवी देवताओं की शास्त्रोक्त विधि से पूजा अर्चना किया जाता है, तथा अग्नि में आहुति प्रदान की जाती है। आहुति के रूप में जो द्रव्य या पुरोडाश अग्नि में दिये जाते थे उनसे वर्षा होती थी, तथा पर्यावरण भी स्वच्छ एवं निर्मल होता था। आज जिस प्रकार वायुप्रदूषण बढता जा रहा है, तथा दिल्ली जैसे महानगरों में लोगों को आक्सीजन के लिए संघर्ष करना पड रहा है, ऐसी परिस्थिति में होम-हवन किं देवयज्ञ की महती प्रासंगिकता प्रतीत होती है। भारतीय संस्कृति में अग्निहोत्र का विशेष महत्त्व वर्णित है। अग्निहोत्र में प्रातः एवं सायं होम का विधान किया गया है। वैदिक काल में अग्निहोत्र प्रत्येक सनातनी के लिए आवश्यक कृत्य था। देवयज्ञ के विषय में डॉ. वाचस्पति गैरोला कहते है कि अग्नि में स्वाहा शब्द के साथ हवि या समिधा डालना ही देवयज्ञ है। वस्तुतः इस यज्ञ में विधिपूर्वक अग्नि में दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य की ऊष्मा से वर्षा होती हैं, वर्षा से अन्न पैदा होता है, अन्न से प्रजाएं उत्पन्न होती है एवं जीवन धारण भी करती है। वस्तुतः ऋणत्रय में से देवऋण से मुक्ति पाने के लिए प्रकृतयज्ञ का विशेष महत्त्व है।

(४) भूतयज्ञः – भारतीय संस्कृति सभी प्राणियों के हित की कामना का संदेश देती है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाक् भवेत् ॥[19]

प्रकृति के संरक्षण एवं संवर्धन में सभी प्राणियों का योगदान है। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं पर सभी प्राणियों का अधिकार है, परन्तु आज का मनुष्य इतना लोभी हो चुका है कि वह अपने पेट भरने तक का नही सोचता, अपितु अपनी आगामी

सात पीढियों तक के लिए संचय करने की इच्छा करता है।

आज वड़े वड़े जंगलों से सारे फल मनुष्य तोड़ लेता है, कुछ को खाता है, कुछ को आधुनिक तकनीकि से सुरक्षित करके भविष्य के लिए रख लेता है। जंगलों में रहने वाले पुशु-पक्षी अपना पेट तक नहीं भर पाते हैं। हमें बेजुबान पशु-पक्षियों पर दयाभाव रखना चाहिए। इसी भाव को भूतयज्ञ में वर्णित किया गया है।

वस्तुतः भूतयज्ञ विभिन्न प्राणियों की संतुष्टि के लिए किया जाने वाला यज्ञ है। इसे बलिवैश्वदेव भी कहा जाता है। इसमें पंचबलि का वर्णन मिलता है। जो निम्नलिखित है– (क)गौ बलि, (ख)श्वान बलि, (ग)काक बलि, (घ)देवादि बलि तथा (ङ) पिपीलिका बलि।

ध्यातव्य है कि वैदिकसंस्कृति में बलि शब्द का तात्पर्य अपनी किसी प्रिय वस्तु का दान करके किसी को संतुष्ट करना मात्र है। दुर्भाग्य से कुछ लोग इसका उल्टा अर्थ कर देते है, जहाँ पशुओं तथा मनुष्यों की बलि देकर किसी देवी देवता को खुश करने की बात करते हैं। इस प्रकार की बलि शब्द की व्याख्या नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है।

उपर्युक्त पंचबलि में गौ, श्वान, काक, तथा पिपीलिका को सन्तुष्ट करने हेतु भोजन तथा देवताओं को प्रसन्न करने हेतु पाकशाला में पके हुए भोज्य पदार्थों का भोग लगाने का विधान है। वैश्वदेव को हविष्यान्न के द्वारा सन्तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए, जो निम्नोक्त है – गेहूँ, चावल(विना उसना), तिल, मूँग, जौ, मटर, कँगुनी, नीवार। इनके अभाव में साग, पत्ता, फल, फुल, मूल से भी वैश्वदेव कर्म करने का विधान है –

शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम्।
संकल्पयेद् यदाहारं तेनैव जुहुयाद्हविः ॥[20]
एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणोनित्यमर्चति।
स गच्छति परमं स्थानं तेजोमूर्त्तिं पथर्जुना ॥[21]

पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि भूतों (प्राणियों) का कल्याण इसी यज्ञ द्वारा होता है। आचार्य उमेश शास्त्री ने कहा है कि – प्राणियों की सेवा ही भूतयज्ञ है। आज के समय में इस यज्ञ की प्रासंगिकता प्रतीत होती है। यद्यपि भारत सरकार के द्वारा आज पशु-संरक्षण को बढावा दिया जा रहा है। उत्तर-प्रदेश में गौ संरक्षण के अनेक केन्द्र खोले गये है, जो कि प्रशंसनीय कार्य है।

(५) नृयज्ञ/मनुष्य – इस यज्ञ को अतिथि यज्ञ कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में अतिथि (विद्वान् अथवा संन्यासी जो विना बताए घर आए) को देवता कहा गया है–

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।[22]

कठोपनिषद् के अनुसार ब्राह्मण रूपी अतिथि साक्षात् अग्नि के समान होता है –

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।

तस्यैताँशान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥[23]

इसीलिए घर पर अतिथि के आते ही उसे जल देना चाहिए, जिससे अग्नि शांत हो। सूर्यास्त के समय आये अतिथि को सूर्योढ कहा गया है, जिसका मध्याह्न के समय आये अतिथि की अपेक्षा आठ गुणा अधिक महत्त्व होता है। सूर्योढ अतिथि को विना भोजन कराये नही जाने देना चाहिए –

दिनेऽतिथौ तु विमुखे शते यत् पातकं भवेत्।

तदेवाष्टगुणं प्रोक्तं सूर्योढे विमुखे गते ॥[24]

गृहस्थ को घर पर आये हुए अतिथि को आसन, पैर धोने के लिए जल तथा स्वादिष्ट भोजन कराकर संतुष्ट करना चाहिए। बलिवैश्वदेव के बाद सबसे पहले अतिथियों को सम्मान सहित भोजन का भी विधान है – 'अतिथिमेवाग्रे भोजयेत्।'

महर्षि वेदव्यास के अनुसार जैसे वृक्ष अपनी शाखा काटने वालों को भी छाया, फल, फूल देता है, उसी प्रकार हमारे

दरवाजे पर यदि शत्रु भी आ जाएं तो उसका आतिथ्य करना चाहिए। अतिथि गृहस्थ के घर केवल भोजन ही नही करता, अपितु उसके पापों का भी भक्षण करता है।

वस्तुतः यह यज्ञ गृहस्थ के उत्तम संस्कार का परिचायक है। "अतिथि तुम कब जाओगे" आदि फिल्मों के द्वारा जिस प्रकार समाज का चित्र चरित्र प्रस्तुत किया जा रहा है, वह बहुत बढा चिन्ता का विषय है। महानगरों में रहने वाले लोग जिस प्रकार एकांगी जीवन व्यतीत कर रहे हैं तथा अपने स्वजनों से जिस प्रकार व्यवहार रख रहे हैं, वह भारतीय संस्कृति का बिल्कुल भी हिस्सा नहीं है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु नृयज्ञ किं वा मनुष्ययज्ञ की प्रासंगिकता प्रतीत होती है।

उपर्युक्त पंचमहायज्ञ गृहस्थ के सांस्कृतिक पक्ष को विकसित करते हैं, तथा उह्ने उन्नतिशील भी बनाते हैं। महर्षि मनु के अनुसार जो गृहस्थ श्रद्धा-भक्ति तथा विश्वास के साथ इन पंचमहायज्ञों का संपादन करता है, वह जीव हत्या के पाप से भी बच जाता है। साम्प्रतिक काल में इन पंचमहायज्ञों की नितान्त प्रासंगिकता प्रतीत होती है।

पाद टिप्पणी

1. ऋग्वेद-१.१.१
2. मत्स्यपुराण-१४४.४४
3. विष्णुधर्मोत्तरपुराण-२.१०४
4. ऋग्वेद-१.१६४.३५
5. अथर्ववेद-५.१०.१४
6. का.पुराण-२१.१६
7. मनुस्मृति-३.६७
8. मनुस्मृति-३.६८
9. मनुस्मृति-३.६९
10. मनुस्मृति-३.७०
11. मनुस्मृति-३.७१
12. मनुस्मृति-३.७३
13. मनुस्मृति-२.७
14. शतपथब्राह्मण ११.५.६.३ से ७
15. विष्णुधर्मोत्तरपुराण
16. मनुस्मृति-४.२५७
17. मनुस्मृति-३.८०
18. मनुस्मृति-३.८३
19. वृहदारण्यकोपनिषद्-१.४.१४
20. देवीभागवत–११.२२.१२
21. मनुस्मृति–३.९३
22. तैत्तरीयोपनिषद्-१.११.१
23. कठोपनिषद्-१.१.७
24. नित्यकर्मपूजाप्रकाश–१५५